१२

जैन-दर्शन की समन्वय-परम्परा

दर्शन-शास्त्र विश्व की सम्पूर्ण सत्ता के रहस्योद्घाटन की अपनी एक धारणा बनाकर चलता है। दर्शन-शास्त्र का उद्देश्य है, विश्व के स्वरूप को विवेचित करना। इस विश्व में चित् और अचित् सत्ता का स्वरूप क्या है? उक्त सत्ताओं का जीवन और जगत् पर क्या प्रभाव पड़ता है? उक्त प्रश्नों पर अनुसन्धान करना ही दर्शन-शास्त्र का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य है। भारत के समग्र दर्शनों का मुख्य ध्येय बिन्दु है—आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन। चेतन और परमचेतन के स्वरूप को जितनी समग्रता के साथ भारतीय-दर्शन ने समझाने का सफल प्रयास किया है, उतना विश्व के अन्य किसी दर्शन ने नहीं। यद्यपि मैं इस सत्य को स्वीकार करता हूँ कि यूनान के दार्शनिकों ने भी आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया है, तथापि वह उतना स्पष्ट और विशद प्रतिपादन नहीं है, जितना भारतीय-दर्शनों का है। यूनान के दर्शन की प्रतिपादन-शैली सुन्दर होने पर भी उसमें चेतन और परमचेतन के स्वरूप का अनुसन्धान गम्भीर और मौलिक नहीं हो पाया है। यूरोप का दर्शन तो आत्मा का दर्शन न होकर, केवल प्रकृति का दर्शन है। भारतीय-दर्शन में प्रकृति के स्वरूप का प्रतिपादन कम है और आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन अधिक है। जड़ प्रकृति के स्वरूप का प्रतिपादन भी एक प्रकार से चैतन्य-स्वरूप के प्रतिपादन के लिए ही है। भारतीय-दर्शन जड़ और चेतन—दोनों के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करता है और साथ में वह यह भी बतलाने का प्रयत्न करता है कि मानव-जीवन का प्रयोजन और मूल्य क्या है? भारतीय-दर्शन का अधिक झुकाव आत्मा की ओर होने पर भी, वह जीवन-जगत् की उपेक्षा नहीं करता। मेरे विचार में भारतीय-दर्शन जीवन और अनुभव की एक समीक्षा है। दर्शन का आविर्भाव विचार और तर्क के आधार पर होता है। दर्शन तर्क-निष्ठ विचार के द्वारा सत्ता और परम सत्ता के स्वरूप को समझाने का प्रयत्न करता है और फिर वह उसकी यथार्थता पर आस्था रखने के लिए प्रेरणा देता है। इस प्रकार भारतीय-दर्शन में तर्क और श्रद्धा का सुन्दर समन्वय उपलब्ध होता है। पश्चिमी-दर्शन में बौद्धिक और सैद्धान्तिक-दर्शन की ही प्रधानता रहती है। पश्चिमी-दर्शन स्वतन्त्र चिन्तन पर आधारित है। अतः आप्त प्रमाण की वह घोर उपेक्षा करता है। इसके विपरीत भारतीय-दर्शन आध्यात्मिक-चिन्तन से प्रेरणा पाता है। भारतीय-दर्शन एक आध्यात्मिक खोज है। वस्तुतः भारतीय-दर्शन, जो चेतन और परम चेतन के स्वरूप की खोज करता है, उसके पीछे एकमात्र उद्देश्य यही है कि मानव-जीवन के चरम लक्ष्य—मोक्ष को प्राप्त करना। एक बात और है, भारत में दर्शन और धर्म सहचर और सहगामी रहे हैं। धर्म और दर्शन में यहाँ पर न किसी प्रकार का विरोध है और न उन्हें एक-दूसरे से अलग रखने का ही कोई प्रयत्न है। दर्शन चित्-अचित् सत्ता की मीमांसा करता है और उसके स्वरूप को तर्क और श्रद्धा से पकड़ता है, जिससे कि मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि भारतीय-दर्शन एक बौद्धिक विलास नहीं है, बल्कि एक आध्यात्मिक खोज है। धर्म क्या है? धर्म अध्यात्म-सत्य को अधिगत करने का एक व्यावहारिक उपाय है। भारत में दर्शन का क्षेत्र इतना व्यापक है कि भारत के प्रत्येक धर्म की शाखा ने अपना एक दार्शनिक आधार तैयार किया है। पाश्चात्य Philosophy शब्द और पूर्वीय दर्शन शब्द की परस्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में तुलना नहीं की जा सकती। Philosophy शब्द का अर्थ होता है—ज्ञान का प्रेम, जबकि दर्शन का अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार करना। दर्शन का अर्थ है—दृष्टि। दर्शन-शास्त्र सम्पूर्ण सत्ता का दर्शन है, फिर भले ही वह सत्ता चेतन हो अथवा अचेतन। भारतीय-दर्शन का मूल आधार चिन्तन और अनुभव रहा है। विचार के साथ आचार की भी इसमें महिमा और गरिमा रही है।

क्या भारतीय-दर्शनों में विषमता है?

यहाँ प्रश्न यह होता है कि भारतीय-दर्शनों में विषमता कहाँ है? मुझे तो कहीं, पर भी भारतीय-दर्शनों में विषमता दृष्टिगोचर नहीं होती है। अनेकान्तवाद की दृष्टि से विचार करने पर हमें सर्वत्र समन्वय और सामञ्जस्य ही दृष्टिगोचर होता है, कहीं पर भी विरोध और विषमता नहीं मिलती। भारतीय-दर्शनों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है, उनका वर्गीकरण किसी भी पद्धति से क्यों न किया जाए, किन्तु उनका गम्भीर अध्ययन और चिन्तन करने से ज्ञात होता है कि एक चार्वाक-दर्शन को छोड़कर, भारत के शेष समस्त दर्शनों का—जिसमें वैदिक-दर्शन, बौद्ध-दर्शन और जैन-दर्शन की समग्र शाखाओं एवं उपशाखाओं का समावेश हो जाता है, उन सबका मूल ध्येय रहा है, आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन और मोक्ष की प्राप्ति। अतः मैं भारतीय-दर्शन को दो विभागों में विभाजित करता हूँ—भौतिकवादी और अध्यात्मवादी। एक चार्वाक-दर्शन को छोड़कर भारत के अन्य सभी दर्शन अध्यात्मवादी हैं, क्योंकि वे आत्मा की सत्ता में विश्वास रखते हैं। आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में भले ही सब एक मत न हों, किन्तु उसकी सत्ता से किसी को इन्कार नहीं है। क्षणिकवादी बौद्ध-दर्शन भी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता है। जैन-दर्शन भी आत्मा को अमर, अजर और एक शाश्वत तत्त्व स्वीकार करता है। जैन-दर्शन के अनुसार आत्मा का न कभी जन्म होता है और न कभी उसका मरण ही होता है। न्याय और वैशेषिक-दर्शन आत्मा की अमरता में विश्वास रखते हैं, किन्तु आत्मा को वे कूटस्थ, नित्य और विभु मानते हैं। सांख्य और योग-दर्शन चेतन की सत्ता को स्वीकार करते हैं और उसे नित्य और विभु मानते हैं, मीमांसा-दर्शन भी आत्मा की अमरता को स्वीकार करता है। वेदान्त-दर्शन में आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन तो अद्वैत की चरम सीमा पर पहुँच गया है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार यह समग्र सृष्टि ब्रह्ममय है। कहीं पर भी एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। जैन-दर्शन और अन्य सांख्य आदि भारतीय-दर्शन द्वैतवादी हैं। द्वैतवादी का अर्थ है—जड़ और चेतन, प्रकृति और पुरुष तथा जीव और अजीव—दो तत्त्वों को स्वीकार करनेवाला दर्शन। इस प्रकार, एक चार्वाक को छोड़कर भारत के शेष सभी अध्यात्मवादी दर्शनों में आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न होते हुए भी, उसकी नित्यता और अमरता पर सभी को आस्था है।

कर्मवादी ही सच्चा आत्मवादी है :

भारतीय-दर्शन के अनुसार यह एक सिद्धान्त है कि जो आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता है, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह कर्म की सत्ता को भी स्वीकार करे। चार्वाक को छोड़कर शेष सभी भारतीय-दर्शन कर्म और उसके फल को स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ यह है कि शुभ कर्म का फल शुभ होता है और अशुभ कर्म का फल अशुभ होता है। शुभ कर्म से पुण्य और अशुभ कर्म से पाप होता है। जीव जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार उसका जीवन अच्छा अथवा बुरा बनता रहता है। कर्म के अनुसार ही हम सुख और दुःख का अनुभव करते हैं, किन्तु यह निश्चित है कि जो कर्म का कर्ता होता है, वही कर्म-फल का भोक्ता भी होता है। भारत के सभी अध्यात्मवादी-दर्शन कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। जैन-दर्शन ने कर्म के सिद्धान्त की जो व्याख्या प्रस्तुत की है, वह अन्य सभी दर्शनों से स्पष्ट और विशद है। आज भी कर्मवाद के सम्बन्ध में जैनों के संख्याबद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। अध्यात्मवादी-दर्शन को कर्मवादी होना आवश्यक ही नहीं, परम आवश्यक भी है। प्रश्न यह है कि यह कर्म क्या है, कहाँ से आता है? और, क्यों आता है? तथा कैसे अलग होता है? कर्म एक प्रकार का पुद्गल ही है, यह आत्मा से एक विजातीय तत्त्व है। राग और द्वेष के कारण आत्मा कर्मों से बद्ध हो जाती है। माया, अविद्या और अज्ञान से आत्मा का विजातीय तत्त्व के साथ जो संयोग हो जाता है, यही आत्मा की बद्ध-दशा है। भारतीय दर्शन में विवेक और सम्यक्-ज्ञान को आत्मा से कर्म को दूर करने का उपाय माना है। आत्मा ने यदि कर्म बाँधा है, तो वह उससे विमुक्त भी हो सकती है। इसी आधार पर भारतीय-दर्शनों में कर्म-मल को दूर करने के लिए अध्यात्म-साधना का विधान किया गया है।

पुनर्जन्मवाद :

भारतीय-दर्शन की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता है—जन्मान्तरवाद अर्थात् पुनर्जन्म। जन्मान्तरवाद भी चार्वाक-दर्शन को छोड़कर अन्य सभी दर्शनों का एक सामान्य सिद्धान्त है। यह कर्म के सिद्धान्त से फलित होता है। कर्म-सिद्धान्त कहता है—शुभ-कर्मों का फल शुभ मिलता है और अशुभ-कर्मों का फल अशुभ। परन्तु, इस जीवन-यात्रा में आबद्ध सभी कर्मों का फल इस जीवन में पूर्ण नहीं हो पाता। इसलिए कर्म-फल को भोगने हेतु अन्य अनेक जीवन की आवश्यकता है। यह संसार जन्म-मरण की अनादि शृंखला है, यही जन्मान्तरवाद है। इसका कारण मिथ्या-ज्ञान और अविद्या है। जब तत्त्व-ज्ञान से, यथार्थ-बोध से, वीतराग-भाव से नये कर्म का आस्रव रुक जाता है, तथा पूर्व-बद्ध कर्मों की निर्जरा होकर सर्वथा नाश हो जाता है, तब इस संसार का भी अन्त हो जाता है। संसार, बन्ध है, और बंध का नाश ही मोक्ष है। बन्ध का कारण अज्ञान एवं मिथ्या-आचार है और मोक्ष का कारण—तत्त्व-ज्ञान एवं वीतराग-भावरूप आचार है। जब तक आत्मा पूर्वकृत कर्मों को भोग नहीं लेगी, तब तक जन्म-मरण का प्रवाह कभी परिसमाप्त नहीं होगा।

भारतीय-दर्शनों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है—मोक्ष एवं मुक्ति। भारतीय-दर्शनों का लक्ष्य यह रहा है कि यह मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण के लिए साधक को निरन्तर प्रेरित करते रहें। मोक्ष का सिद्धान्त भारत के सभी अध्यात्मवादी-दर्शनों को मान्य है। भौतिकवादी होने के कारण अकेला चार्वाक-दर्शन ही इसको स्वीकार नहीं करता। भौतिक-वादी चार्वाक जब इस शरीर से भिन्न आत्मा की सत्ता को ही स्वीकार नहीं करता, तब उसके विचार में मोक्ष का उपयोग और महत्त्व ही क्या रह जाता है? बौद्ध-दर्शन में आत्मा के मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। निर्वाण का अर्थ है—सब दुःखों के आत्यन्तिक उच्छेद की अवस्था। जैन-दर्शन में मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—तीनों शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है। जैन-दर्शन के अनुसार, मोक्ष एवं मुक्ति का अर्थ है—आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था। मोक्ष अवस्था में आत्मा सदा-सर्वदा के लिए स्व-स्वरूप में स्थिर रहती है, उसमें किसी भी प्रकार का विजातीय तत्त्व नहीं रहता। सांख्य-दर्शन में प्रकृति और पुरुष के संयोग को संसार कहा गया है और प्रकृति तथा पुरुष के वियोग को मोक्ष कहा गया है। न्याय और वैशेषिक भी यह मानते हैं कि तत्त्व-ज्ञान से ही मोक्ष होता है। वेदान्त-दर्शन तो मुक्ति को स्वीकार करता ही है। उसके अनुसार जीव के बद्ध स्वरूप को समझ लेना ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त कर लेना ही मुक्ति है। इस प्रकार भारत के सभी अध्यात्मवादी-दर्शन मोक्ष एवं मुक्ति का प्रतिपादन करते हैं। हम देखते हैं कि मोक्ष के स्वरूप में और उसके प्रति-पादन की प्रक्रिया में भिन्नता होने पर भी, लक्ष्य सबका एक ही है और वह लक्ष्य है—बद्ध आत्मा को बन्धन से मुक्त करना।

अध्यात्म-साधना :

भारतीय-दर्शन में एक बात और है, जो सभी अध्यात्मवादी दर्शनों को स्वीकृत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह है—आध्यात्मिक-साधना। साधना सबकी भिन्न-भिन्न होने पर भी उसका उद्देश्य और लक्ष्य प्रायः एक जैसा ही है। अध्यात्मवादी-दर्शन के अनुसार इस साधना को जीवन का आचार-पक्ष कहा जाता है। जब तक विचार को आचार का रूप नहीं दिया जाएगा, तब तक जीवन के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। प्रत्येक अध्यात्मवादी-दर्शन ने अपने-अपने सिद्धान्त के अनुसार अपने विचार को आचार का रूप देने का प्रयत्न किया है। भारत में एक भी अध्यात्मवादी-दर्शन ऐसा नहीं है, जिसके नाम पर कोई सम्प्रदाय स्थापित न हुआ हो। यह सम्प्रदाय क्या है? प्रत्येक दर्शन का अपने विचार-पक्ष को आचार में साधित करने के लिए यह एक प्रयोग-भूमि है। सम्प्रदाय उन विचारों की अभिव्यक्ति है, जो उसके द्रष्टाओं ने कभी साक्षात्कार किया था। यही कारण है कि भारतीय-दर्शन में विचार और आचार तथा धर्म और दर्शन साथ-साथ चलते हैं। भारतीय-दर्शनों की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यही है कि उनमें धर्म और दर्शन की मूल समस्याओं में कोई भेद नहीं किया गया है। भारत में धर्म शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया गया है। वस्तुतः भारत में धर्म और दर्शन दोनों एक ही लक्ष्य की पूर्ति करते हैं। भारत के दर्शनों में धर्म केवल विश्वासमात्र ही नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक-विकास की विभिन्न अवस्थाओं और जीवन की ऊर्ध्व-यात्रा की विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप मौनवी व्यवहार और आचार का एक क्रियात्मक सिद्धान्त है। यहाँ पर दर्शन के सिद्धान्तों का मूल्यांकन जीवन की कसौटी पर किया गया है और धार्मिक सिद्धान्तों को प्रज्ञा की तुला पर तोला गया है। भारत के अध्यात्मवादी-दर्शन की यह एक ऐसी विशेषता है, जो अतीतकाल के और वर्तमान काल के अन्य किसी देश के दर्शन में प्राप्त नहीं है। धर्म और दर्शन परस्पर सम्बद्ध हैं। उनमें कहीं पर भी विरोध और विषमता दृष्टिगोचर नहीं होती, सर्वत्र समन्वय और सामञ्जस्य ही भारतीय-धर्म और संस्कृति का एकमात्र आधार रहा है।

समन्वय दृष्टि :

समन्वयवाद के आविष्कार करनेवाले श्रमण भगवान् महावीर हैं। भगवान् महावीर के युग में जितने भी उनके समकालीन अन्य दार्शनिक थे, वे सब एकान्तवादी परम्परा की स्थापना कर रहे थे। उस युग का भारतीय-दर्शन दो भागों में विभाजित था—एकान्त नित्यवादी और एकान्त अनित्यवादी, एकान्त भेदवादी और एकान्त अभेदवादी, एकान्त सद्वादी और एकान्त असद्वादी तथा एकान्त एकत्ववादी और एकान्त अनेकत्ववादी। सब अपने-अपने एकान्तवाद को पकड़ कर अपने पंथ, सम्प्रदाय और परम्परा को स्थापित करने में संलग्न थे। सब सत्य का अनुसंधान कर रहे थे और सब सत्य की खोज कर रहे थे, किन्तु सबसे बड़ी भूल यह थी कि उन्होंने अपने एकांशी सत्य को ही सर्वांशी सत्य मान लिया था। भगवान् महावीर ने अनेकान्तवाद और स्याद्वाद के वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर समग्र दर्शनों का विश्लेषण किया और कहा—अपनी-अपनी दृष्टि से सभी दर्शन सत्य हैं, परन्तु सत्य का जो रूप उन्होंने अधिगत किया है वही सब-कुछ नहीं है, उससे भिन्न भी सत्य की सत्ता शेष रह जाती है, जिसका निषेध करने के कारण वे एकान्तवादी बन गए हैं। उन्होंने अपने अनेकान्त सिद्धान्त के द्वारा अपने युग के उन समस्त प्रश्नों को सुलझाया, जो आत्मा और परलोक आदि के सम्बन्ध में किए जाते थे। उदाहरण के लिए, आत्मा को ही लीजिए, बौद्ध-दार्शनिक आत्मा को एकान्त क्षणिक एवं अनित्य मान रहे थे। वेदान्त-वादी-दार्शनिक आत्मा को एकान्त नित्य और कूटस्थ ही मान रहे थे। भगवान् महावीर ने उन सबका समन्वय करते हुए कहा—पर्याय-दृष्टि से अनित्यवाद ठीक है और द्रव्य-दृष्टि से नित्यवाद भी ठीक है। आत्मा में परिवर्तन होता है—इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता, परन्तु यह भी सत्य है कि परिवर्तनों में रह कर भी और परिवर्तित होती हुई भी आत्मा कभी अपने अनादि मूल चित्-स्वरूप से सर्वथा नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार उन्होंने कर्मवाद, परलोकवाद और जन्मान्तरवाद के सम्बन्ध में भी अपने अनेकान्तवादी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टिकोण के आधार पर समन्वय करने का सफल प्रयास किया था। भगवान् महावीर के इस अनेकान्तवाद का प्रभाव अपने समकालीन बौद्ध-दर्शन पर भी पड़ा और अपने युग के उपनिषदों पर भी पड़ा। उत्तरकाल के सभी आचार्यों ने किसी-न-किसी रूप में उनके इस उदार सिद्धान्त को स्वीकार किया ही था। यही कारण है कि भारतीय-दर्शनों में कुछ विचार-भेद और साधन-भेद होते हुए भी, उद्देश्य और लक्ष्य में किसी प्रकार का विलक्षण विरोध नहीं है, उनमें परस्पर विरोध की अपेक्षा समन्वय ही अधिक है।

श्रोता ही नहीं, द्रष्टा :

भारतीय-दर्शन जीवन और जगत् के साक्षात्कार का दर्शन है। भारतीय चिन्तकों ने कहा कि श्रुत और दृष्ट दोनों में से श्रुत की अपेक्षा दृष्ट का ही अधिक महत्त्व है। दर्शन शब्द का मूल अर्थ ही सत्य का दर्शन है, साक्षात्कार है। अतः भारतीय-दर्शन श्रोता की अपेक्षा द्रष्टा ही अधिक है। उसने जीवन के यथार्थ सत्य को साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया है और तदनुरूप सफलता भी प्राप्त की। भारतीय-दर्शन जितना महत्त्व चिन्तन को देता है, उतना ही अधिक महत्त्व वह अनुभव को भी देता है। भारतीय-दर्शनों का अन्तिम लक्ष्य जीवन को भौतिक धरातल से ऊपर उठा कर सत्य की उस चरम सीमा तक पहुँचाना है, जिसके आगे अन्य कुछ न प्राप्य है, और न राह है। भारतीय-साधना का लक्ष्य वर्तमान जीवन के बन्धनों से मुक्त होकर इसी दिव्य अक्षर जीवन की ओर अग्रसर होने का है। भारतीय-साधना के मूल में अध्यात्म-भाव है और इसी कारण वह प्रत्येक वस्तु को अध्यात्म की तुला पर तौलता है, और अध्यात्म की कसौटी पर कस कर ही उसे स्वीकार करता है। जीवन में, जो कुछ अनात्मभूत है, उसे वह स्वीकार करना नहीं चाहता, फिर भले ही, वह कितना ही सुन्दर और कितना ही मूल्यवान क्यों न हो? इसी आधार पर भारतीय-दर्शन जीवन और जगत् को अध्यात्म की कसौटी पर कसता है और उसके खरे उतरने पर उसकी अध्यात्म-दृष्टि से व्याख्या करके, वह उसे जन-जीवन के लिए ग्राह्य बना देता है, जिसे पा कर जन-जीवन समृद्ध हो जाता है।

निराशावाद नहीं, आशावाद :

भारतीय-दर्शन का उद्देश्य वर्तमान असन्तुष्ट जीवन के चक्रवात में इधर-उधर भटकते रहना ही नहीं है, बल्कि उसकी वर्तमान व्याकुलता का लक्ष्य है, अनाकुलता पाना। कुछ आलोचक भारतीय-दर्शन पर दुःखवादी और निराशावादी होने का आरोप लगाते हैं। यह प्रवृत्ति पाश्चात्य-दार्शनिकों में अधिक है और उनका अनुसरण करके कुछ भारतीय विद्वान भी उनके स्वर में अपना स्वर मिला देते हैं। मेरे विचार में भारतीय-दर्शन को निराशावादी और दुःखवादी कहना सत्य से परे है। भारतीय-दर्शन वर्तमान जीवन के दुःख-क्लेशों पर खड़ा होता तो अवश्य है, परन्तु वह उसे अन्तिम सत्य एवं लक्ष्य नहीं मानता है। उसका एकमात्र लक्ष्य, तो इस क्षणभंगुर और निरन्तर परिवर्तनशील तथा प्रतिक्षण मरण के मुख में जाने वाले संसार को शाश्वत अमृतत्व प्रदान करना है। भारतीय-दर्शन की यह विशेषता रही है कि उसने क्षणभंगुरता में अमरता को देखा है। उसने अंधकार में भी प्रकाश की खोज की है और उसने उन्माद में भी संबोधि के उन्मेष को पाने का निरन्तर प्रयास किया है। पुरातन-काल का ऋषि अपनी अन्तर्-वाणी को शब्दों में अभिव्यक्त करता है—**"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।"**

—"प्रभो, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो और मुझे मरण-शीलता से अमरता की ओर ले चलो।"

जैन-दर्शन का सूत्र है—**"सव्व दुक्ख-पहीणमग्गं"**

—साधना, समग्र दुःखों को पूर्णतया क्षीण करने का मार्ग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या आप इसे भारत का दुःखवाद एवं निराशावाद कहते हैं? स्पष्ट है, इसे जीवन का पलायनवाद कहने की भूल कोई कैसे कर सकता है? भारत के दर्शन-शास्त्र में यदि कहीं पर दुःख-निराशा आदि के विचार मिलते भी हैं, तो वे विचार इसलिए नहीं कि वह हमारे जीवन का लक्ष्य है, बल्कि वह इसलिए होता है कि हम अपने इस वर्तमान जीवन की दीन-हीन अवस्था को छोड़कर महत्तता, उज्ज्वलता और पवित्रता की ओर अग्रसर हो सकें। मूल में भारतीय-दर्शन निराशावादी नहीं हैं। दुःखवाद को वह वर्तमान जीवन में स्वीकार करके भी अनन्त काल तक दुःखी रहने में विश्वास नहीं करता। वर्तमान जीवन में मृत्यु सत्य है, किन्तु वह कहता है, मृत्यु शाश्वत नहीं है। यदि साधक के हृदय में यह भावना जम जाए कि मैं आज मरणशील अवश्य हूँ, किन्तु सदा मरणशील नहीं रहूँगा, तो इसे आप निराशावाद नहीं कह सकते। यह तो उस निराशावाद को आशावाद में परिणत करने वाला एक अमर संकल्प है। भारतीय-दर्शन प्रारम्भ में भले ही स्थूलदर्शी प्रतीत होता हो, किन्तु अन्त में वह सूक्ष्मदर्शी बन जाता है। स्थूलदर्शी से सूक्ष्मदर्शी बनना और सूक्ष्मदर्शी से सर्वदर्शी बनना ही उसके जीवन का लक्ष्य है। हमारे दर्शन, हमारे धर्म और हमारी संस्कृति के सम्बन्ध में जो कुछ विदेशी विद्वानों ने कहा है, उसे आँख मूंद कर स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। आप अपनी स्वच्छ, तटस्थ बुद्धि की तुला पर तौल कर ही उसे ग्रहण करने का अथवा छोड़ने का प्रयत्न करें, अन्यथा दार्शनिक चर्चा के नाम पर व्यर्थ ही इधर-उधर का बहुत-सा अन्ध-विश्वास आप ग्रहण कर लेंगे।

उदार दृष्टिकोण :

भारतीय-दर्शन का प्राचीन-काल से ही उदार और विशाल दृष्टिकोण रहा है। क्योंकि वह अखण्ड सत्य का अनुसंधान करने हेतु चला है। सत्य-शोधक के लिए आवश्यक है कि वह अपनी दृष्टि को विशाल एवं व्यापक रखे। जहाँ भी सत्य हो, उसे ग्रहण करने की भावना रखे और जो कुछ असत्य है, उसे छोड़ने की तत्परता एवं साहस भी उसमें हो। सत्य के उपासक के लिए, किसी के मत का खण्डन करना आवश्यक नहीं है, एकांगी खण्डन और मण्डन दोनों ही सत्य से दूर रहनेवाले बौद्धिक द्वन्द्व हैं। दूसरे का खण्डन करने के लिए अपने मण्डन की आवश्यकता रहती है और फिर अपने मण्डन के लिए दूसरे का खण्डन आवश्यक हो जाता है। सत्य की उपलब्धि के साथ खण्डन का किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। खण्डन में प्रायः दूसरे के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव रहता है। अतः सत्य को पाने का पथ, खण्डन-मण्डन से अति दूर है। दुर्भाग्य है, मध्य-काल में आकर भारतीय-दर्शनों में खण्डन-मण्डन की उग्र परम्परा चल पड़ी। विवेक-चक्षु को बन्द कर अपना मण्डन और दूसरों का खण्डन करना, यही एकमात्र उनका लक्ष्य बन गया था। प्रारम्भ में प्रतिपाद्य सत्य तार्किक-मीमांसा के हेतु खण्डन कुछ अर्थ भी रखता था, किन्तु आगे चल कर यह खण्डन की परम्परा सर्वग्रासी बन गई और एक ही पंथ और एक ही परम्परा के लोग भी परस्पर एक-दूसरे का ही खण्डन करने लग गए। आचार्य शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन किया आचार्य मध्व ने और आचार्य मध्व के द्वैतवाद का खण्डन किया आचार्य शंकर के शिष्यों ने। शंकर-मत का रामानुज ने खण्डन किया और रामानुज-मत का शंकर-मत ने खण्डन किया। मीमांसक ने नैयायिक का खण्डन किया और नैयायिक ने मीमांसक का खण्डन किया। इस प्रकार जिस वैदिक-परम्परा ने जैन और बौद्ध के विरुद्ध मोर्चा खड़ा किया था, वे आपस में ही लड़ने लगे। बौद्धों में भी हीनयान और महायान को लेकर एक भयंकर खण्डन-मण्डन शुरू हो गया। महायान ने हीनयान को मिटा देना चाहा, तो हीनयान ने भी महायान को कुचल देने का दृढ़ संकल्प किया। बुद्ध के भक्त वैदिक और जैनों से लड़ते-लड़ते आपस में ही लड़ मरे। इसी प्रकार जिन के उपासक जैन भी, जिनकी साधना का एकमात्र लक्ष्य है, राग और द्वेष से दूर होना, वे भी राग और द्वेष के झंझावात में उलझ गए। श्वेताम्बर और दिगम्बरों के संघर्ष भी कम भयंकर नहीं थे। यह एक बहुत बड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लज्जा की बात थी कि अनेकान्त के माननेवाले परस्पर में ही लड़ पड़े और अपना मण्डन तथा दूसरों का खण्डन करने लगे। याद रखिए, यदि आप दूसरे के घर में आग लगाते हैं, तो वह आग फैलकर आपके घर में भी आ सकती है। यह कभी मत समझिए कि हम दूसरों का खण्डन कर के अपना मण्डन कर सकेंगे। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक पंथ काँच के महल में बैठा हुआ है, इसलिए उसे दूसरे को पत्थर मारकर अपने को सुरक्षित समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। खेद है, भारत का अध्यात्मवादी-दर्शन अपने अध्यात्मवाद को भूलकर पंथवादी बनकर लड़ने को तैयार हो गया। भारतीय-दर्शन का उज्ज्वल रूप खण्डन एवं मण्डन में नहीं है, वह है उसके समन्वय में और है उसके अनेकान्तवादी दृष्टि-कोण में। समन्वय ही भारतीय-दर्शन का वास्तविक स्वरूप है और यही उसका मूल आधार है। जैन-धर्म की अनेकान्त-दृष्टि इसी समन्वय-परम्परा को पुष्ट करती है। एक तरह से जैन-दर्शन का मूल, यह समन्वय-परम्परा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org